ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-5* June-2017
Innovation The Research Concept

मानव स्वतन्त्रता का प्राकृतिक एवं सामाजिक पहलू (जॉर्ज बनार्ड शॉ की स्वतन्त्रता तथा दासता की अवधारणा के सन्दर्भ में)

आभा सिंह
शोधछात्रा,
मानव विज्ञान विभाग,
एच0 एन0 बी0 गढ़वाल
यूनिवर्सिटी, उत्तराखण्ड

सारांश

यह शोध पत्र इच्छा स्वातन्त्रय के सत्तात्मक परिप्रेक्ष्य मे बात नहीं करता है अपितु मनुष्य को इच्छा की स्वतन्त्रता होती है इस अवधारणा को सत्तात्मक रूप से सत्य मानते हुये इच्छा स्वातन्त्रय के सामाजिक संगठन के ढाँचे पर विचार करता है। इस शोध पत्र मे हम मुख्य रूप से जार्ज बनार्ड शॉ के स्वतन्त्रता व दासता की आलोचनात्मक अवधारणा पर बात करेंगे तथा साथ ही शॉ द्वारा अपने विभिन्न कृतियो मे दर्शाये गये स्वतन्त्रता व दासता की व्याख्याओ को सम्मिलित करेंगे। किसी व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र उसी स्थिति मे कहा जा सकता है जब वह कुछ भी, कभी भी और कही भी करने के लिए स्वतन्त्र हो तथा यदि वह अनिच्छुक है तो न करने के लिए भी स्वतन्त्र हो। परन्तु यह असम्भव है क्योंकि मनुष्य होने के प्रत्यय मे ही कम से कम प्रकृति का दास तो हो ही जाता है। कुछ प्राकृतिक कार्य जो मनुष्य के ऊपर उसके स्वयं के उत्तरदायित्व होते है उन्हे किसी न किसी रूप मे उसने दूसरे मनुष्यो के कन्धो पर स्थानान्तरित करने के उपाय सोच लिए हैं और यहीं से दासता के सामाजिक रूप का अर्विभाव होता है। शॉ इसे मनुष्य की मनुष्य को प्रदत्त अप्राकृतिक दासता का नाम देते है। शॉ दासता के दो रूपो मे भिन्नता दर्शाते है– मनुष्य की प्रकृति के प्रति दासता तथा मनुष्य की मनुष्य के प्रति दासता।

मनुष्य प्रकृति का दास रहने के लिए बाध्य है क्योकि मनुष्य स्वयं प्रकृति का एक भाग है। प्रकृति यदि हम मनुष्यों को दास रखती है तो उसकी आवश्यकता, उपयोगिता तथा लाभ भी स्पष्ट है। मनुष्य की प्रकृति के प्रति दासता मनुष्य के लिए किसी न किसी रूप मे प्रसन्नता का द्योतक है। उदाहरणार्थ प्यास लगना एक प्राकृतिक दासता है परन्तु वह शारीरिक गतिविधियो की आवश्यकता है तथा पानी पीने के उपरान्त हमे सुख की प्राप्ति होती है तथा साथ ही प्रकृति मे जल की उपलब्धता भी सुनिश्चित है परन्तु जब इसी जल पर शक्तिशाली वर्ग अपना अधिकार स्थापित करके दूसरे मनुष्यो को उसको उपलब्ध कराने के फलस्वरूप अपने उत्तरदायित्व उसके कन्धो पर डालता है तो यह मनुष्य की मनुष्य को प्रदत्त दासता कहलाती है, जो समय के साथ अपना रूप अधिक क्रूर करती गयी तथा इस प्रकार के प्रारूप मे ढलती गयी कि मनुष्य को वह दासता प्रतीत होना ही समाप्त हो गयी। शॉ कहते है "अधिकतर वास्तविक सरकारे आपके ऊपर दासता थोपती है और उसे वह स्वतन्त्रता के रूप मे प्रस्तुत करती हैं।" मनुष्य की मनुष्य के प्रति दासता उस समय तक समाप्त नहीं हो सकती जब तक कानूनी रूप से इसे समाप्त करने के प्रयास न किये जायें।

अतः प्रस्तुत शोध पत्र मे हम स्वतन्त्रता व दासता की सैद्धान्तिक व्याख्या करते हुये उसका विरोध उसके व्यवहारिक पहलू से दिखाने का प्रयास करेंगे तथा साथ ही साथ यह भी दर्शाने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार समाज के संगठन के लिए बनाये गये नियम व कानून मनुष्य के लिए क्रूर हो जाते हैं जबकि उनका प्रारूप मनुष्य की स्वतन्त्रता के सन्दर्भ मे ही प्रतीत होता है। जार्ज बनार्ड शॉ को केन्द्र मे रखते हुए हम अन्य दार्शनिको व समाज सुधाारको के स्वतन्त्रता व दासता सम्बन्धित विचारो को इस शोध पत्र मे सम्मिलित करने का प्रयास करेंगे।

मुख्य शब्द : स्वतन्त्रता, दासता।

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध पत्र में मानवशास्त्र का अध्ययन दर्शनशास्त्रीय पद्धति से किया गया है। इस शोध पत्र में मानव जीवन के मूलभूत वास्तविकता को समझने का प्रयास किया गया है तथा मानव जीवन वास्तव में वर्तमान में क्या है इसका समीक्षात्मक वर्णन किया गया है। शोध पत्र में हम क्रमवार तथ्यों को विस्तारित करने का प्रयत्न करेंगे जिससे शोध पत्र का सारगर्भ समझ में आ सके। सर्वप्रथम हम दो विषयों के आपसी सम्बन्धों को समझने का प्रयास करेंगे जिससे शोध पत्र का दृष्टिकोण समझ में आ सके।

दर्शनशास्त्र तथा मानवशास्त्र में सम्बन्ध

मानवशास्त्र के दर्शनशास्त्रीय दृष्टिकोण में मानव स्वभाव तथा मानव परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। अपने इस दृष्टिकोण में दर्शनशास्त्र मानव स्वभाव या प्रकृति के प्रश्न को विविध प्रकार के वैज्ञानिक पद्धति तथा मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण को समीक्षा के द्वारा अध्ययन करने का प्रयत्न करता है।

दर्शनशास्त्र स्वयं में समस्त विषयों का सार है। समस्त विषय दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति माने जाते है। इसलिए इस शोध पत्र में दर्शनशास्त्र का मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। यह शोध पत्र जॉर्ज बर्नाड शॉ के निबन्ध स्वतन्त्रता पर आधारित है। इस शोध पत्र में बर्नाड शॉ द्वारा उन्नीसवीं सदी में बताये गये स्वतन्त्रता के विभिन्न आयामों की बीसवीं सदी में उपयोगिता है कि नहीं यह समझाने का प्रयास किया गया है। इसलिए सर्वप्रथम स्वतन्त्रता शब्द का वर्णन करेंगे।

स्वतन्त्रता का प्रश्न मनुष्य समाज में सदैव से ही एक ज्वलन्त प्रश्न रहा है। यदि मनुष्य समाज के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो हमें ज्ञात होता है कि प्रत्येक नये समाज के विकास के सन्दर्भ में प्राचीन समाज में मनुष्य उतना स्वतन्त्र नही था। इसी प्रकार यदि मानव स्वतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन इतिहास का सर्वेक्षण किया जाय तो मनुष्य को प्राचीन समय में प्राप्त स्वतन्त्रता से घिन ही आती है। writetoscore.com पर लिखे लेख के अनुसार– स्वतन्त्रता, का प्रयोग शब्द तथा विशेषता के रूप में विद्वानों के द्वारा बहुत ही लापरवाही से किया जाता है। इसलिए सर्वप्रथम इस शब्द का उचित अर्थ तथा विशेषता जान लेना आवश्यक है।[1]

Dictionary.com के अनुसार– "the state of being free or at liberty rather than in confinementor under physical restrain"[2] के अनुसार किसी कैद में रहकर शारीरिक स्वतन्त्रता का हनन के बजाय मुक्त अवस्था या स्वेच्छाचारिता की अवस्था स्वतन्त्रता की अवस्था कहलाती है।

Exemption from external control, interference, regulation, etc.[3]

बाह्य़य नियन्त्रण, हस्तक्षेप, अधिनियम से मुक्त अवस्था।

Vocabulary.com

According to this freedom is the state of being entirely free. Many governments claim to guarantee freedom, but often people do not, in fact, have the absolute freedom to act or speak with restrain. [4]

इस उद्घृत के अनुसार स्वतन्त्रता पूरी तरह से मुक्त रहने की अवस्था है। बहुत सी सरकारे पूर्ण रूप से मुक्त होने का दावा करती है परन्तु प्रायः लोग होते नहीं है। यद्यपि वे पूर्णरूप से मुक्त होने का अभिनय करते है और संयम के साथ बोलते हैं।

इस तरह से हम स्वतन्त्रता को एक मुक्त अवस्था के रूप में समझ सकते हैं। स्वतन्त्रता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जॉर्ज बर्नाड शॉ के द्वारा मानव के लिए किया गया था। अतः शोध पत्र के अगले भाग में शॉ के जीवन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। शॉ का यह निबन्ध इस शोध पत्र का शोध क्षेत्र तथा केन्द्र बिन्दु है।

जॉर्ज बनार्ड शॉ

writetoscore.com के अनुसार जॉर्ज बनार्ड शॉ आइरिश मूल के लेखक थे।[5] विलियम शेक्सपियर के समय से वे ब्रिटिश के महत्वपूर्ण नाटककार के रूप में प्रसिद्ध थे। वे बहुसृज्नात्मक नाटककार तथा साहित्यकार भी थे। वे जॉन्थन स्विफ्ट की तरह एक प्रभावशाली पुस्तिका लेखन का कार्य भी करते थे। NCERT द्वारा अपलोड किये गये जॉर्ज बनार्ड शॉ पर लेख के अनुसार जॉर्ज बनार्ड शॉ के नाटककार तथा अलोचक थे। इनके मुख्य नाटक आर्म्स एण्ड द मैन, कैनडिडा, मैन एण्ड सुपरमैन है। इनका जन्म सन् 1856 में हुआ था तथा मृत्यु सन् 1950 में हुयी थी।[6]

freehelpstoenglishliterature.blogspot के अनुसार शॉ का यह निबन्ध मूलरूप से बी0बी0सी0 रेडियो पर सन् 1935 में दिया गया एक व्याख्यान था। जो बाद में निबन्ध के रूप में प्रकाशित हुआ।[7]

जॉर्ज बनार्ड शॉ का लेख "स्वतन्त्रता"

इस शोध पत्र में मुख्य रूप से समाज में शासक वर्ग द्वारा स्वतन्त्रता के नाम पर अत्यन्त चतुराई से मनुष्य को उपलब्ध करवायी गयी दासता पर प्रकाश डाला गया है। शोध पत्र की पृष्ठभूमि में हमने महान ब्रिटिश नाटककार और दार्शनिक जार्ज बनार्ड शॉ के एक निबन्ध **'स्वतन्त्रता'** को रखा है। इसमें उन्होंने मानव दासता के दो रूप दर्शायें है– प्रकृति द्वारा मनुष्य को प्रदत्त प्राकृतिक दासता इसे हम बाध्यता भी कह सकते है तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य पर थोपी गयी अप्राकृतिक दासता।

उपकल्पना

जैसा कि पूर्व में बताया गया है इस शोध पत्र में हम इस धारणा को मानकर चलेंगे कि मनुष्य को इच्छा की स्वतन्त्रता होती है और वह अपने कर्म करने व निर्णय लेने के लिए पूर्णतया स्वतन्त्र है।

इस शोध पत्र को तीन भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग में हमने स्वतन्त्रता की अवधारणा के दार्शनिक पहलू को स्पष्ट किया है। यहाँ पर हमने मानव स्वतन्त्रता को तत्वमीमॉसा की दृष्टि से देखा है जिसे दर्शनशास्त्र में **'इच्छास्वातन्त्रय'** कहा जाता है। शोध पत्र के द्वितीय भाग में हमने मानव स्वतन्त्रता को सामाजिक दृष्टि से परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस भाग में हमने मुख्य रूप से शॉ द्वारा प्रस्तुत की गयी स्वतन्त्रता

की अवधारणा को उन्ही की दृष्टि से समझने का प्रयास किया है तथा साथ ही साथ उनके द्वारा बतायी गयी दो प्रकार की दासता– प्राकृतिक व अप्राकृतिक, को अलग–अलग स्पष्ट करने का प्रयास किया है। अन्त में शोध पत्र के तृतीय भाग में हमने समाज मे व्याप्त दासता के भिन्न–भिन्न हथकंडो और उपक्रमों को दर्शाया है। शॉ ने शासक वर्ग द्वारा समाज में सदियों से कोई न कोई उपाय करके पोषित की गयी दासता को अत्यन्त तथ्य परक और रूचिकर ढ़ग से प्रस्तुत किया है। इसे हमने इस भाग में दर्शाया है।

अतः यहाँ पर सर्वप्रथम हम मानव स्वतन्त्रता के दार्शनिक पहलू इच्छा स्वतन्त्रय को समझने का प्रयास करेंगे।

भाग 1

स्वतन्त्रता का दार्शनिक पक्ष अर्थात इच्छा स्वातन्त्रय

यदि तत्वमीमांसीय दृष्टि से स्वतन्त्रता की बात की जाय तो प्रश्न उठता है क्या मनुष्य अपनी इच्छा से कोई कर्म करने या न करने के लिए, कोई निर्णय लेने या न लेने के लिए मूलरूप में स्वतन्त्र है? इसी विषय में दर्शन शास्त्र में एक मान्यता नियतिवाद या यन्त्रवाद की है। इस सिद्धान्त को मान लेने से मनुष्य के सामाजिक रूप से स्वतन्त्र होने की कल्पना भी नही की जा सकती क्योंकि मनुष्य का प्रत्येक कर्म पूर्व निर्धारित होगा तथा उसके उत्तर दायित्व की कोई सम्भावना नही रह जायेगी। इसे कार्य कारणवाद का सिद्धान्त भी कहते है। भारतीय दर्शन में इसे भाग्यवाद कहा गया है। पुर्नजन्म की व्यवस्था इसी नियम की देन है। जिसे वेदों में रित व्यवस्था कहा गया है।

इसके विपरीत दूसरा नियम जो इच्छा स्वातन्त्रय के नाम से दर्शनशास्त्र में जाना जाता है,यह मानता है कि मनुष्य अपने कर्म करने को पूर्णरूप से स्वतन्त्र होता है। क्योंकि उसके पास विकल्प उपस्थित होते है और वह अपनी उपयोगिता के अनुसार विकल्प का चुनाव करता है।

जैसा कि पूर्व में बताया गया है इस शोध पत्र में हम इस धारणा को मानकर चलेंगे कि मनुष्य को इच्छा की स्वतन्त्रता होती है और वह अपने कर्म करने व निर्णय लेने के लिए पूर्णतया स्वतन्त्र है।

भाग 2

प्राकृतिक व अप्राकृतिक दासता

शॉ की स्वतन्त्रता की समीक्षा वास्तव मे पारम्परिक और पूँजीवादी स्वतन्त्रता की अवधारणा की अस्पष्ट निंदा है। राजनीतिक रूप से शॉ लोकतन्त्रात्मक समाज के समर्थक थे, जिसके अनुसार समाज को समाजवादी राजनीतिक स्थिति में धीरे–धीरे लोकतन्त्र के उपाय से पहुँचने का प्रयास करना चाहिए। शॉ ने अपने निबन्ध का प्रारम्भ इस तर्कवाक्य के साथ किया है कि "व्यक्ति को पूर्णरूप से स्वतन्त्र केवल उसी स्थिति में कहा जा सकता है, जहाँ वह वो सब करने में सक्षम हो जिसे वह करना चाहता हो, रूचि रखता हो, जहाँ करना चाहता हो और यदि वह करना नही चाहता हो तो न करने के लिए भी पूरी तरह से स्वतन्त्र हो।" परन्तु यदि विचार किया जाये तो इस प्रकार का व्यक्ति पृथ्वी पर उपलब्ध नही हो सकता। हर स्थिति में हम प्रकृति की यन्त्रवादी व्यवस्था के सन्दर्भ में बाध्य पाते है। भूख–प्यास, निंद्रा इसी प्रकार की प्राकृतिक बाध्यता है। दूसरी ओर प्रकृति के ही सन्दर्भ में कुछ दैनिक कार्य करने के लिये बाध्य है। वस्त्र धोना, धारण करना, उतारना, आजीविका अर्जित करना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करना इत्यादि इसी प्रकार की दासता है। यह बाध्यता अपरिहार्य है जिसे शॉ ने प्राकृतिक दासता कहा है। एक दूसरी प्रकार की बाध्यता जो मनुष्य द्वारा मनुष्य पर थोपी जाती है तथा जो अन्याय का प्रतिरूप है। शॉ ने इसे मनुष्य द्वारा मनुष्य पर थोपी गयी अप्राकृतिक दासता का नाम दिया है। **"महान समाज सुधारक रूसों ने कहा है कि मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है परन्तु स्वयं को सर्वत्र बेडियों में जकड़ा हुआ पाता है।"** यूं तो समाज इस प्रकार की दासता के दृष्टान्तों से भरा पड़ा है परन्तु इसका सर्वोत्तम उदाहरण था समाज में एक समय में व्याप्त दास प्रथा जो वर्तमान में भी अपना रूप बदलकर समाज में व्याप्त है।

अतः यहाँ पर शॉ द्वारा बताये गये प्राकृतिक व अप्राकृतिक दासता को अलग–अलग समझना उचित होगा।

प्राकृतिक दासता

प्रकृति ने मनुष्य को यन्त्रवत रूप से कुछ शारीरिक व जैविक आवश्यकतायें प्रदान की है यही प्राकृतिक दासता है। इसके अतिरिक्त शॉ ने कुछ दैनिक क्रियाओं को भी प्राकृतिक दासता के अर्न्तगत रखा है। जैसे मनुष्य शारीरिक रूप से खाने–पीने के लिये बाध्य है, जैविक रूप से श्वास लेने के लिए बाध्य है तथा औपचारिक रूप से वस्त्र धारण करने व गमन करने के लिए बाध्य है। यह दासता अपरिहार्य, अवर्जनीय तथा अवश्यम्भावी है। इसे नकारा नही जा सकता है और ना ही इससे बचा जा सकता है। प्रकृति के प्रति दासता आनन्द व संतुष्टि का द्योतक है। यदि प्रकृति ने हमें प्यास दी है तो उसके लिये जल भी उपलब्ध करवाया है और जब उस जल से प्यास बुझाई जाती है तो शारीरिक सन्तुष्टि का अनुभव होता है। हमारी निंद्रा, भूख, मलत्याग आदि इसी प्रकार की प्राकृतिक दासता है जिनके भरण के बाद आनन्द का अनुभव होता है।

शॉ के अनुसार पृथ्वी पर पूर्णतया स्वतन्त्र मनुष्य की कल्पना नही की जा सकती क्योंकि तार्किक रूप से यह सम्भव नहीं है। *westbengalssc english. blogspot.in के अनुसार मनुष्य इच्छा करे या ना करे परन्तु जीवन के 1/3 भाग का समय निद्रा लेने में व्यतीत करना उसकी बाध्यता है। इसी प्रकार वस्त्र धोने में, धारण करने मे व उतारने में, खाने–पीने में, एक स्थान से दूसरे स्थान को यात्रा करने में भी समय व्यतीत करने के लिए वह बाध्य है।* [8] दिन के लगभग बारह घण्टों तक वो प्रकृति की दासता में रहता है जिसे वो अल्प नहीं कर सकता है। शॉ के शब्दों में " **हमें अपने जीवनकाल के एक तिहाई भाग में निद्रा मे, वस्त्र पहनना उसे उतारना, खाने तथा पीने मे प्रतिदिन कुछ घण्टे, एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए कुछ समय व्यतीत करना ही होता है।**"

शॉ के अनुसार प्रकृति द्वारा मनुष्य को प्रदत्त दासता प्रसन्नतादायक होती है क्योंकि प्रकृति मनुष्य को यदि खाने–पीने आदि के कार्यों की बाध्यता में रखती है तो खाने और पीने को वह इतना आनन्दायक बना देती है कि कुछ व्यक्ति तो केवल खाने–पीने के उद्देश्य से ही जीवित रहने लग जाते है। सभ्य समाज और परिवार के सुख इतने प्रवीण हो जाते है कि युवा विवाह के लिये उत्सुक हो जाते है और प्रगतिशील समाज में अपने स्वप्न को जीने के लिए उसका अंग बन जाते है। इस तरह से मनुष्य धीरे–धीरे संवेदना तथा भावना की बेड़ियों में जकड़ता चला जाता है।

मनुष्य द्वारा मनुष्य को प्रदत्त अप्राकृतिक दासता

शॉ के अनुसार अत्यधिक चतुराई से मनुष्य ने इस प्रकार के तन्त्र स्थापित किये है जिससे कि शक्तिशाली और शासक वर्ग अपनी कुछ प्राकृतिक दासता को दूसरों के कन्धों पर डाल सके जो कि दासता का अप्राकृतिक रूप है। "**व्यक्ति दिन में बारह घण्टे प्राकृतिक दासता के बंधन में रहने के लिये बाध्य है और शेष बारह घण्टे की दासता को राष्ट्र के प्रशासनिक व विधिवत नियमों ने अप्राकृतिक दासता के रूप में अपने अधिकार मे रखा है।**" उदाहरणार्थ प्रकृति ने मनुष्य को प्यास नामक दासता प्रदान की तो पानी के रूप में उसके भरण की प्राकृतिक योजना भी बना दी परन्तु वहीं पर शासक वर्ग ने उस पानी पर अपना अधिकार कर लिया। प्यास और पानी के मध्य शासक वर्ग ने अपना अप्राकृतिक तन्त्र बनाया और शोषित वर्ग के रूप में दासता को उत्पन्न किया। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि मनुष्य द्वारा खडा किया गया अर्थ तन्त्र इसी प्रकार की अप्राकृतिक दासता का साधन है। शॉ के अनुसार मनुष्य की मनुष्य को प्रदत्त यह दासता पूर्णतया प्राकृतिक दासता के विपरीत है। वास्तविकता यह है कि शासक वर्ग सामान्य जन के लिये स्वतन्त्रता की बात अवश्य करते है परन्तु इस स्वतन्त्रता को वह केवल स्वयं के लिये आरक्षित रख लेते है।

शॉ जब कहते है कि अपनी कुछ प्राकृतिक कार्यों को आप दूसरों के कन्धों पर डाल सको और स्वयं को प्रकृति की पराधीनता से मुक्त रख सको। पराधीनता की ऐसी व्यवस्था समाज ने बड़ी ही चतुराई से कर ली है अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को प्रकृति ने समान पराधीनता मे रखा है परन्तु मानव ने अपनी चतुर नीतियों से उस प्राकृतिक दासता को भी दूसरे मनुष्यों को झेलने के लिये बाध्य कर दिया है। **उदाहरणार्थ–** आप अपने उपलब्ध समय के कुछ घण्टे कपडे धोने, पहनने, खाना पकाने और खाने आदि मे व्यतीत करने के लिये प्राकृतिक रूप से बाध्य है परन्तु शासक वर्ग ने उसे भी दूसरो के कन्धों पर डाल दिया है। यहाँ पर यह समझना अत्यन्त रूचिकर है कि शासक वर्ग ने मनुष्य को अपना दास रखने के लिए अर्थतन्त्र को सदैव से ही अपने प्रमुख अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है और जो आज भी निरन्तर जारी है। खाना बनाने की बाध्यता आर्थिक संरचना के माध्यम से घर के रसोइये पर डाली गयी, कपड़ा धोने की बाध्यता इसी आर्थिक तन्त्र के उपयोग से धोबी पर डाली गयी, अनाज उत्पादन व उपलब्धता, बंधुआ मजदूरी, उद्योगों में कार्यरत श्रमिक इत्यादि आर्थिक तन्त्र को प्रकृति ने उत्पन्न नही किया है अपितु मनुष्य ने अपने उपयोगानुसार निर्मित किया है।

इस प्रकार शासक या अधिकारी वर्ग द्वारा जो प्राकृतिक दासता शोषित वर्ग पर थोपी जाती है वही मनुष्य की मनुष्य को प्रदत्त दासता का रूप है। इस सन्दर्भ में शॉ का कथन है कि **"जो हम एक घोडे और एक मधुमक्खी के साथ करते है वही हम मनुष्य के साथ भी कर सकते है।"** बनार्ड शॉ एक पूँजीवादी राष्ट्र में प्रदत्त तथाकथित स्वतन्त्रता का उपहास उडाते हुए कहते है कि, **"अधिकतर वास्तविक सरकारे हम पर दासता थोपती है और उसे स्वतन्त्रता का नाम देकर भ्रम फैलाती है।"** यह कथन इस तथ्य से भी सिद्ध होता है कि दासतावादी समाज से लेकर वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था तक चाहे वह सामन्तवाद हो या राजतन्त्र, पूँजीवाद हो या भ्रमात्मक लोकतन्त्र, हर नयी व्यवस्था पुरानी व्यवस्था को पराधीनतावादी व्यवस्था ही बताती है परन्तु जब तक वह पुरानी व्यवस्था अस्तित्व मे रही तब तक प्रजा को यह ज्ञान भी नही रहा कि यह दासता है और इसका कोई अच्छा विकल्प भी हो सकता है। वर्तमान लोकतन्त्र भी दासता का ही पर्याय है अन्तर केवल यह है कि हमें मानव अधिकार के नाम पर मन्त्रविद्या रूपी छडी पकड़ा दी गयी है जो पूर्णरूप से अनुपयोगी है। और इस भय से कि कही शोषित वर्ग अपने अधिकारों के सम्बन्ध में जागरूक न हो जाय और समस्या न खडी कर दे, शासक वर्ग ने मूलकर्तव्य नामक अस्त्र की व्यवस्था संविधान में बडी चतुराई से कर ली है। पूँजीवादी व्यवस्था को लोकतन्त्र का वेश पहनाया गया है। वनस्पति उनकी उन्नति के लिये कार्य करने के उस राज्य के लोगो को तन्त्र द्वारा मूर्ख बनाया जाता है। वर्तमान समाज में अर्थतन्त्र के रूप में दासता का अप्राकृतिक रूप निरन्तर कार्यरत है। प्रत्येक राष्ट्र के नागरिक ठगे जा रहे है क्योंकि उन्हें इस मनुष्य के द्वारा मनुष्य को प्रदत्त अप्राकृतिक दासता का कोई ज्ञान नही है।

शॉ के अनुसार मनुष्य द्वारा मनुष्य को प्रदत्त दासता अप्राकृतिक है और किसी भी मूल्य पर समाप्त होनी चाहिए। शॉ समाज में साहित्यक व दार्शनिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों का समर्थन करते हैं कि वह सदैव इस प्रकार की व्यवस्था के विरोध में है शॉ कहते हैं कि **"कवि कभी दासता का समर्थन नही करते है . . . और कोई भी मनुष्य इतना श्रेष्ठ नही होता है कि वो किसी दूसरे मनुष्य का स्वामी बन सके।"** शॉ कार्ल मार्क्स का उदाहरण देते है कि विधिवत नियमों का प्राथमिक कार्य केवल दासता को रोकना होना चाहिए। क्योंकि उस समय में दासता के विरूद्ध कोई सामान्य नियम नहीं थे। **थॉमस मूर** ने भी इस प्रकार की सामाजिक बुराई के विरूद्ध आवाज उठाई थी। उनका मत था कि प्रत्येक को विवशतापूर्वक उसके भाग का कार्य उसके स्वयं के बुद्धि और हाथों से करने के लिये प्रदान करके ही शान्ति स्थापित की जा सकती है तथा यह कार्य किसी और के कन्धों पर नहीं डाला जाना चाहिए।'

इस प्रकार शॉ मनुष्य द्वारा मनुष्य पर थोपी जाने वाली अप्राकृतिक दासता की कड़ी आलोचना करते है तथा इस वर्ग व्यवस्था के कारणों की समीक्षा शासक वर्ग के निजी स्वार्थ के रूप में करते है तथा इस व्यवस्था के अन्याय पूर्ण प्रभावों के लिए प्रत्यक्ष रूप से समस्त शासनात्मक तन्त्रों को प्रत्यक्ष रूप से दोषी ठहराते है। अतः यहाँ पर हम अपने लेख के तृतीय भाग में प्रवेश करेंगे। यहाँ पर विभिन्न प्रकार के सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्थाओं को शॉ इस अन्याय के लिए दोषी ठहराते है।

स्वतन्त्रता को परिभाषित करने वाले अन्य विद्वान[9]

1. जर्मन दार्शनिक इमैन्युअल कान्ट इच्छा स्वातन्त्रय के प्रबल समर्थक थे। क्योंकि इच्छा स्वतन्त्रय के बिना नैतिकता की कल्पना भी नही की जा सकती है।
2. जे0 एस0 मिल के सन्दर्भ में स्वतन्त्रता का आशय स्वतन्त्र गतिविधि से लिया जाता है।
3. Jean Paul Sartre के अनुसार– जो आपके साथ हुआ हो उसके साथ आप क्या कर पाते हैं; वो ही स्वतन्त्रता है।

   इस पंक्ति में यह कहा गया है कि मनुष्य अपने साथ घटित घटनाओं का मनुष्य से तो बदला ले सकता है परन्तु स्वतन्त्र परिस्थितियों से कैसे बदला लेगा।

   जैसे– सुख–दुख एक सामान्य अवस्था है। परन्तु सुख तथा दुख को हम देख नहीं सकते हैं। हम मात्र इनका अनुभव कर सकते हैं। ऐसे में हम यदि दुखी होते हैं तो जिस वजह से या जिसके कारण से हमें दुख मिला है हम उस कारण को तो भला बुरा कह सकते हैं परन्तु जिस दुख की भावना का अनुभव होता है उस भावना को ऐसे क्षति पहुँचा सकते हैं।

   इस तरह से कह सकते हैं कि व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है परन्तु उसकी भावना स्वतन्त्र है।
4. Rabindranath Tagore के अनुसार– प्रेम अधिकार का दावा नहीं करता, बल्कि स्वतन्त्रता देता है।

   रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने जीवन में प्रेम को अधिक महत्ता दी है। उनके अनुसार मनुष्य के बीच का आपसी प्रेम आपस में आधिपत्य या अधिकार नहीं दिखाता है, वह स्वतन्त्रता देता है।

   जैसे– पारिवारिक रिश्तों में माता–पिता, भाई–बहन इत्यादि आपस में प्रेमपूर्ण, सौहार्द की भावना के साथ रहते हैं। आपसी प्यार उन्हें एक बन्धन में बांधे रखता है। बच्चा इसी प्यार के वातावरण में जीवन के विभिन्न पहलुओं को सीखता है। माता–पिता बच्चे को जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते हैं। वे बच्चों को समाज में स्वयं को बेहतर ढ़ग से प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करते हैं। वे बच्चों पर अपना अधिकार दिखा कर उनकी इच्छाओं का पतन नहीं करते हैं। यद्यपि वे बच्चों के साथ बच्चा बनकर जीवन में आगे बढ़ने में उनकी सहायता करते हैं।
5. Charles Kingsley के अनुसार– संसार में दो तरीके की स्वतन्त्रता है– एक झूठी, जहाँ इन्सान वो करने के लिए स्वतन्त्र है जो वो चाहता है और दूसरी सच्ची, जिनमें इन्सान वो करने के लिए स्वतन्त्र है जो उसे करना चाहिए।

   संसार में दो प्रकार की स्वतन्त्रता सच्ची तथा झूठी को इस प्रकार वर्णित करेंगे।

   सच्ची स्वतन्त्रता

   यह स्वतन्त्रता इस प्रकार की स्वतन्त्रता होती है जिसमें मनुष्य वह करने के लिए स्वतन्त्र होता है जो उसे करने का मन होता है। अर्थात् इस प्रकार की स्वतन्त्रता में मनुष्य अपनी जिम्मेदारियों से घिरकर भी वे समस्त कार्यों को करने के लिए स्वतन्त्र है जो उसे करना चाहिए। जैसे माता तथा बच्चों का रिश्ता। माता का कर्तव्य अपने बच्चे की भूख को शान्त करना है, माता अपनी इस जिम्मेदारी को पूर्ण करने के लिए वह किसी भी प्रकार के मार्ग को अपना कर अपने बच्चे की भूख को शान्त कराने के लिए स्वतन्त्र है। चाहे भोजन किसी भी मार्ग से प्राप्त किया गया हो।

   झूठी स्वतन्त्रता

   यह स्वतन्त्रता सच्ची स्वतन्त्रता के विपरीत है। माता अपने बच्चे की भूख को शान्त कराने के लिए कोई भी मार्ग अपनाने के लिए स्वतन्त्र है परन्तु क्या वास्तव में समाज में यह सम्भव है? यदि गलत मार्ग से भोजन प्राप्त किया गया है तो इस कृत्य के लिए माँ को सजा भी भुगतनी पड़ती है। इस तरह से सच्ची स्वतन्त्रता केवल वाक्यों तक ही सीमित है वास्तविक जीवन में यह कभी कभार ही देखने को मिलती है।
6. Albert Camus- स्वतन्त्रता कुछ नहीं, बस बेहतर होने का अवसर मात्र है। इनके अनुसार स्वतन्त्रता वास्तव में कुछ नहीं होती है। यह मनुष्य को बेहतर बनने के अवसर प्रदान करती है।

   जैसे– प्राइवेट कम्पनी में नौकरी करने वाले कर्मचारी दिन रात कडी मेहनत करते हैं और अपने मेहनत के बल पर कम्पनी पर उच्च पदों पर आसीन होते है। यही मेहनत उनकी योग्यता को निखारती है। जब वे कर्मचारी उसी योग्यता के आधार पर किसी अन्य कम्पनी में उच्च वेतन तथा उच्च पद, या लाभ देखता है तो वह पुरानी कम्पनी को छोडकर नयी कम्पनी में कार्यभार ग्रहण कर लेता है। इस तरह से वह स्वयं को और बेहतर बनाने में लगा रहता है। स्वयं को बेहतर करने का यही अवसर स्वतन्त्रता है।
7. Marcus Tulrius Cicero के अनुसार– स्वतन्त्रता किसी भी मनुष्य की वो स्वाभाविक शक्ति है जहाँ उसे मजबूर करके या नियम बना कर रोका न जाये, जो उसे वो करने देती है जो वो चाहता है।

   मनुष्य वास्तव में क्या कर सकता है ये उस मनुष्य से अधिक कोई नहीं जान सकता। मनुष्य का स्वयं का सबसे अच्छा साथी होता है। यदि आरम्भिक मनुष्य के जीवन पर प्रकाश डाला जाय तो हम यह पाते हैं कि उन्हीं मानव ने आविष्कार किये

जो अपने जीवन को नियमों की बेडियों में नहीं जकडे रहने देना चाहते थे। समाज विभिन्न प्रकार के नियमों का जंजाल है जहाँ नियम मनुष्य को दासता की बेडियों में जकडने के लिए बनाया जाता है।

मनुष्य को विभिन्न नियमों के बन्धनों में जकडने से उसका मस्तिष्क स्वतन्त्र मन से सोच नहीं पाता है। जिसकारण उसके मस्तिष्क में आने वाले विचार भी आने वाले विचार भी प्रभावित होता है तथा सदैव अनिश्चितता की भावना से घिर जाता है।

8. भगत सिंह के अनुसार– क्रान्ति मानव जाति का एक अपरिहार्य अधिकार है, स्वतन्त्रता सभी का एक कभी न खत्म होने वाला जन्म सिद्ध अधिकार है, श्रम समाज का वास्तविक निर्वाहक है।

इनके अनुसार स्वतन्त्रता मानव जाति का जन्म सिद्ध अधिकार है। मनुष्य, जन्म स्वतन्त्र रूप से लेता है परन्तु सामाजिक प्राणी होने के कारण सामाजिक नियम उसे पूरी तरह से जकड़ लेता है। जिस कारण उसके अधिकारों का हनन होता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को क्रान्ति का मार्ग अपनाना पड़ता है। ऐसी ही स्थिति 16वीं शताब्दी से सन् 1950 तक भारत में उत्पन्न हुई थी। उस समय अंग्रेजो द्वारा भारत को पराधीन कर लिया गया था। अंग्रेजों से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भारत के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों द्वारा विभिन्न लडाईयाँ लडी गयी। इन लडाईयों को क्रान्ति का नाम दिया गया। अन्य शब्दों में यह कहें कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन तथा उस स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने के लिए किये गये विभिन्न विरोध क्रान्ति है।

वर्तमान समय में कार्यक्षेत्र में कार्य करने वाले विभिन्न कर्मचारी वर्ग के लिए विभिन्न प्रकार के नियमों में विभिन्न प्रकार के संसोधन किये गये। जैसे कार्य करने की समय सीमा, कार्य का प्रकार इत्यादि। नियमों में इस प्रकार के संशोधन उनकी क्रान्ति का ही परिणाम है। जब कर्मचारियों को लगा की कार्यक्षेत्र में उनकी स्वतन्त्रता का हनन हो रहा है तब उन्होंने इसके विरूद्ध आवाज उठायी तथा अपने अधिकारों को पा लिया।

समाज, व्यक्तियों से मिलकर बना होता है।जीवन जीने के लिए विभिन्न प्रकार से परिश्रम करना पडता है। जैसे– भूख मिटाने के लिए फल, अनाज की आवश्यकता होती है। फल के लिए पेड तथा अनाज के लिए फसल उगाना पडता है। इन दोनों को उगाने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यों को करना पड़ता है। यह सभी श्रम या परिश्रम के फलस्वरूप ही सम्भव है।यदि मूल में देखा जाय तो समाज परिश्रम/श्रम की आधारशिला पर ही टिका हुआ है।

9. Andrezoic – सिर्फ सोते समय ही वास्तविक स्वतन्त्रता का अनुभव होता है क्यूंकि सपनों पर किसी की हुकूमत नहीं चल सकती।

यदि देखा जाय तो वास्तव में हम सोते समय ही पूर्णरूप से स्वतन्त्र होते हैं क्योंकि सोते समय हमारा शरीर और मस्तिष्क दोनों ही आराम की मुद्रा में होते है। हमारे मस्तिष्क में जो भी स्वप्न आते हैं उस पर किसी का कोई वश नहीं होता है। इस स्वप्न पर किसी शासक का कोई अधिकार नहीं होता है।

10. Ronald Reagan- शिक्षा ही स्वतन्त्रता के सुनहरे दरवाजे की कुंजी है।

यदि प्राचीन समय से देखा जाय तो हम यह देखते हैं कि प्राचीन समय में वे ही व्यक्ति पराधीन हुये जो अशिक्षित थे। क्योंकि उन लोगों को अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं था। भारतवर्ष में स्वतन्त्रता की लडाई में महात्मा गांधी का योगदान बहुत है। यदि हम महात्मा गांधी के बारे में देखे तो पता चलता है कि महात्मा गांधी विदेश में पढाई करने गये थे। जहां पर उन्होंने स्वतन्त्रता के महत्व को समझा और भारत आकर स्वतन्त्रता की लडाई में योगदान किया।

विभिन्न विद्वानों द्वारा स्वतन्त्रता की विभिन्न प्रकार की परिभाषायें दी गयी परन्तु अधिकांश परिभाषायें प्रदत्त स्वतन्त्रता के स्वरूप को परिभाषित करती है न कि वास्तविक स्वतन्त्रता को। वास्तव में मनुष्य दासता की बेड़ियों में इस प्रकार से जकड़ा हुआ है कि उसे वास्तविक स्वतन्त्रता का ज्ञान नहीं है। शॉ द्वारा इसी वास्तविक स्वतन्त्रता के बारे में बताया गया है।

भाग 3

शोषण के विभिन्न उपक्रम

शॉ के अनुसार किसी राष्ट्र की सरकार का उद्देश्य मनुष्य के ऊपर थोपी जाने वाली दासता को समाप्त करना होना चाहिये। परन्तु यह अत्यन्त खेदजनक है कि सभी सरकारों का वास्तविक उद्देश्य ठीक इसके विपरीत है। सामान्यतया सरकारें मनुष्य के ऊपर मनुष्य द्वारा प्रदत्त अप्राकृतिक दासता थोपती है और उसे स्वतन्त्रता का नाम देती है। इतना ही नही वे दासता के मानको को नियमित करते है और शासक वर्ग के स्वार्थ को लगातार पूरा करते है। आश्चर्य की बात ये है कि ये दमित वर्ग की स्वतन्त्रता के समस्त रास्ते बन्द कर देते हैं क्योंकि हर स्थिति में उन्हें, एक नही तो दूसरा, अपना स्वामी चुनना ही होता है।

शॉ कहते है कि ऐसे बहुत से कारक है जो कि सामान्य मनुष्य की स्वतन्त्रता के हनन में सहयोग करते है। सर्वप्रथम तो मनुष्य स्वयं की शारीरिक आवश्यकताओं और इच्छाओं का दास है। द्वितीय स्थान पर वह अपने स्वामी की कल्पित आकांक्षाओं का दास बनता है। इनके प्रति उसे स्वयं और अपने परिवार के भरण पोषण के उद्देश्य से हर स्थिति में आज्ञाकारी रहना होता है। मनुष्य की तृतीय दासता उसके भू स्वामी के प्रति होती है। चौथे स्थान पर वह अपने राष्ट्र की सरकार का दास है। जिसको कि उसे आयकर, भूमिकर इत्यादि चुकाना होता है। पाँचवे स्थान पर उसे वह अपारदर्शी शिक्षा अपना दास बना लेती है जो कि सम्बन्धित सरकारों और संस्थानों द्वारा उस पर थोपी जाती है। अन्त में शेष कमी तब पूर्ण हो जाती है जब मताधिकार एवं लोकतन्त्र के रूप में त्रुटिपूर्ण संविधान द्वारा मनुष्य का उपहास किया जाता है।

अब हम एक–एक करके उन कारकों को दर्शाने का प्रयास करेंगे जो कि मनुष्य की स्वतन्त्रता के हनन में मुख्य भूमिका निभाते है परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि इन कारकों को मनुष्य की स्वतन्त्रता के पोषक के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

वर्तमान समय में विभिन्न सरकारों द्वारा मनुष्य की दासता को जीवित रखने के उद्देश्य से सबसे सशक्त अस्त्र मत के अधिकार को बनाया गया।

1. मत के अधिकार के विश्वासघात के विषय में शॉ कहते है कि सरकारें शोषित वर्ग से प्रतिज्ञा करते है कि उनके पास देश को चलाने का अधिकार है क्योंकि उन्हें मताधिकार द्वारा अपना प्रतिनिधि चुनने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। सामान्यतया पाँच वर्षों मे चुनाव होते है जिसमें शासक वर्ग के कुछ धनी मित्र जो कि सामान्य जन से ही अलग हुये होते है चुनाव में उम्मीदवार बन जाते है। चूँकि उम्मीदवार उन पदों के लिये अयोग्य होते है अतः जन सामान्य के पास मताधिकार होने के उपरान्त भी अप्रत्यक्ष रूप से उचित विकल्प चुनने का अधिकार नहीं होता है।
2. शासक वर्ग केवल इस उद्देश्य से कि जन सामान्य को उनकी दासता का अनुभव ना हो सके, अपनी संसद, विद्यालयों तथा समाचार पत्रों के एकाधिकार के बल पर अत्यन्त हतोत्साहित प्रकार के प्रयास करते है। प्रत्यक्ष रूप से उनकी वैचारिक शक्ति पर अधिकार करके शासक वर्ग शोषित वर्ग को अपने विषय में तुच्छ धारणा बनाने से रोकते है। विद्यालय, समाचार पत्र, संसद आदि के माध्यम से शासक वर्ग शोषित वर्ग को वही सोचने और समझने को बाध्य करता है जिसका वो चयन करते है। यदि कभी जनता असंतुष्टि प्रदर्शित करती है तो वो उसके लिये जनता को ही ये कहकर दोषी ठहरा देते है कि वो स्वयं इसके लिये दोषी हैं क्योंकि उन्होंने अनुचित व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि चुना। जब कभी जनसामान्य अनुचित चुनाव प्रक्रिया के विरोध में आन्दोलन करते हैं तो उन्हें स्मरण कराया जाता है कि उनके पास उद्योगालय एक्ट है, श्रमिक संघ है और निःशुल्क शिक्षा तथा नयी–नयी नीतियाँ उनके भले के लिये स्थापित की गयी है। वे किसी भी प्रकार से सदैव दास वर्ग को आश्वस्त कर देते हैं कि उन्हें उससे अधिक की आवश्यकता नहीं है जो उन्हें पूर्व से ही दे दिया गया है।
3. शॉ टिप्पणी करते है कि जब कभी प्रसिद्ध लेखक शासक वर्ग के कपट के विरूद्ध विद्रोह करते है तो शासक वर्ग जन साधारण को राष्ट्रभक्ति के पाठ पढ़ाकर मूर्ख बनाते है और इन विद्रोही व्यक्तियों को देशद्रोही बताने लग जाते है। शॉ अठाहरवीं सदी में वोल्तेयर, रूसो और टॉम पेन, उन्नीसवीं सदी में कॉबेट, शैली, कार्ल मार्क्स और लैसले तथा बींसवी सदी में लेनिन और ट्रॉट्स्की के उदाहरण देकर कहते हैं कि इन लोगों ने इस शोषण के विरूद्ध आवाज उठाई तो इन्हें नास्तिक, लम्पट, दुराचारी, हत्यारे, षडयन्त्रकारी घोषित कर दिया गया। आम जन तक इन विद्रोही लेखकों की बातें न पहुँच पाये इसकी व्यवस्था वे प्रायः उनकी पुस्तकों को खरीदने व बेचने को अपराध घोषित करके कर देते है।
4. शॉ समाज में महिलाओं की सदियों से चली आ रही दमित वयवस्था को ही शासक वर्ग द्वारा वर्तमान युग में अत्यन्त धूर्तता से उपयोग किये जाने की भी आलोचना करते है। शॉ चिन्हित करते है कि महान पुरूष जैसे कि अरस्तू विश्वास करते हैं कि मनुष्य को इससे पहले कि आज्ञाकारी, कार्मिक और विधिवत नागरिक बनाया जा सके, उन्हें मूर्तिपूजक बना दिया जाना चाहिये। निक्रिष्ट वर्ग जैसे महिला या दलित मे से ही किसी एक को उनका प्रतिनिधि चुन लिया जाता है जिसे वर्ग के समस्त जन ईश्वर के समान प्रधान मान लेते है। महिलाएं इस नियम का अपवाद नहीं है। कहने का तात्पर्य है कि शासक वर्ग द्वारा बड़ी चतुराई से समाज के निम्न स्तर के जन सामान्य को उनके अधिकारों के नाम पर मूर्ख बनाया जाता है जबकि वास्तव में वो शासक के अधिकारों की रक्षा में कार्यरत होते है। शॉ बताते है कि जब महिलायें सशक्त हुई और उन्हें ससंद में बैठने का अधिकार दिया गया, तो अपने मत का पहला उपयोग उन्होंने उन सभी महिला अभ्यर्थियों को पराजित करने में किया जो श्रमिकों की स्वतन्त्रता के पक्ष में खड़ी थी और कई वर्षों तक उनकी प्रशंसनीय सेवा कर चुकी थी। उन्होंने केवल एक महिला को चुना जो कि अत्यधिक सम्पन्न थी और इस महिला को ही उन्होंने समाज की अन्य महिलाओं की हितैषी के रूप में प्रदर्शित किया तथा समाज की अन्य महिलायें बहुत ही भावनात्मक रूप से इस लम्पट क्रीडा में शोषित होने के लिए एक बार फिर खडी हो गयी। मानव स्वभाव निश्चित रूप से शिक्षा के माध्यम से परिवर्तित किया जा सकता है। परन्तु शिक्षा राष्ट्र की सरकारों के द्वारा प्रदान की जाती है और वे सरकारे निश्चित रूप से जनता को विशाल संख्या में शिक्षित करने के पक्ष में नही होगी क्योंकि अस्तित्व में रहने वाली व्यवस्था के विरूद्ध विचारधारा को वो सहन नही करेंगें। तो इसी कारण वश विभिन्न राष्ट्रों द्वारा जन सामान्य को शान्त रखने के लिए उपर बताये गये भ्रमात्मक उपायों का प्रयोग किया जाता है।
5. शॉ विज्ञान के नाम पर प्रकृति के साथ की जा रही अति का विरोध अपने निबन्ध में करते है। शॉ कहते है कि विज्ञान और तकनीकी निश्चित रूप से मशीनों के निर्माण में सहायता कर सकते है तथा अनाज के उत्पादन में वृद्धि कर सकते है जो कि सम्पत्ति के समान वितरण में एक प्रत्यक्ष सहायता होगी। माना विज्ञान वर्तमान में इतना सक्षम हो चुका है कि वह आकाश को भी भूमि की ही तरह जोत सकता है, वो आकाश से नाइट्रोजन खींचकर पशुओं को भोजन के रूप में खिलाई जाने वाली घास की गुणवत्ता बढ़ाने में उपयोग कर सकते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप हमारे पशुओं, पालतू जीवों में वृद्धि होगी परन्तु विचारणीय बात यह है कि यह अत्यन्त जोखिम भरा भी हो सकता है। शॉ यहाँ पर पर्यावरण परिस्थितिकी में विज्ञान द्वारा उत्पन्न किये जा रहे व्यवधान, जो कि

आधुनिक जगत का कटु सत्य है, को उद्घटित करते है। क्योंकि शॉ एक दार्शनिक और साहित्यकार थे अतः प्रकृति प्रेम उनके स्वभाव में था और वो कहते भी है 'प्रकृति के पास भी प्रतिक्रिया करने के अपने उपाय हो सकते है जिसके परिणाम हमारे लिये घातक होंगे यदि हम इसी तरह लालची होकर प्रकृति का दोहन करते रहे।'

6. सभ्य समाज जिसे वर्तमान में हम लोकतान्त्रिक व्यवस्था कहते है की अपनी एक सरकार होती है जो एक संविधान बनाती है जिसमें वहाँ के नागरिकों के लिये गणनीय कर्तव्यों और अधिकारों का वर्णन होता है। मनुष्य की स्थाई स्वतन्त्रता भूमि के नियमों के द्वारा बाँध दी जाती है और वे पुलिस व्यवस्था के द्वारा पालन करवाये जाते है जो कि नागरिको को कुछ करने और कुछ ना करने के लिये तथा कर व मूल्य भुगतान करने के लिये बाध्य करती है। यदि वो इन नियमों का पालन नहीं करते हैं तो न्यायालयों के द्वारा उन्हें बंदी बना लिया जाता है और यदि वो अधिक सीमायें लाँघते है तो उन्हें मृत्यु दण्ड दे दिया जाता है। यदि नियम प्रशासनिक संबंधी न्याय के सन्दर्भ में है तो नागरिकों के पास आपत्ति करने का अधिकार नही होता क्योकि उन्हें यह बतलाया जाता है कि ये उनकी आक्रमण, सड़क डकैती और अवैध घटनाओं से उनकी रक्षा करके उनकी स्वतन्त्रता में वृद्धि करते है।

अतः यदि उपर दिये गये समस्त बाध्यताओं के कारण शोषित वर्ग सरकार का विरोध करता है तो वह स्वतः ही ऐसे चक्रव्यूह में फंस जाता है कि उसे अत्यधिक हानि उठानी पडती है। शॉ इस कुटिल व्यवस्था को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि श्रमिको के लिये दमनकारी और निरंकुश स्वामी के नीचे कार्य करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। उनके पास केवल एक ही उपचार शेष रहता है कि वो किसी श्रमिक संगठन के साथ मिलकर आन्दोलन करें। श्रमिक संगठन हड़ताल नामक अस्त्र का प्रयोग करते है जो कि शत्रु के द्वार पर उस समय तक भूखा रहने की योजना है जब तक न्याय ना मिल जाये। हड़ताल का सर्वोत्तम रूप वो है जब एक सामान्य विद्रोह के रूप में समस्त श्रमिक हड़ताल कर देते है जो कि शॉ की दृष्टि में मानव नादानी का भी सर्वोत्तम रूप है क्योंकि यदि इस कार्य को पूर्णतया निष्पादित कर दिया जाये तो यह मनुष्य प्रजाति को एक सप्ताह मे समाप्त कर देगा और सर्वप्रथम मृत्यु को प्राप्त होने वाले श्रमिक ही होंगे। शॉ के अनुसार सामान्य हड़ताल मूर्खता है। प्रायोगिक श्रमिक संगठनों को एक समय में एक बड़ी हड़ताल से अधिक नहीं करने देनी चाहिये जिस समय अन्य सभी श्रमिक अतिरिक्त कार्य करके इसमें सहयोग करेंगे।

निष्कर्ष

इस प्रकार शॉ के इस निबन्ध के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय (1935) से जब शॉ ने यह दासता की अवधारणा सुस्पष्ट की थी, तब से वर्तमान समय में हो रही दासता में कोई विशेष अन्तर नही आया है। शॉ के द्वारा बताये गये दासता के प्रत्येक पहलू की प्रासंगिकता वर्तमान समाज में ज्यों की त्यों बनी हुई है। विशेषकर भारत में हो रहे राजनैतिक घटनाक्रम के सन्दर्भ में। अतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते है कि शासक वर्ग द्वारा शोषित वर्ग पर अप्रत्यक्ष रूप से थोपी जा रही दासता को समझने के लिए तथा सामान्य जन को जागरूक करने के लिए शॉ का यह निबन्ध अत्यन्त उपयोगी है। यदि हम मानव जाति के विकास के क्रम का अध्ययन करें तो हम यह देखते हैं कि मानव आप्राकृतिक दासता से मुक्त उस अवस्था में था जब वह विकास क्रम के निचले क्रम में था। यह अवस्था सभ्यता की अवस्था के पूर्व की अवस्था थी। जिस जिस तरह से मनुष्य विकास की सीढ़ी चढ़ता गया, उस उस तरह से वो नये नये दासता के बन्धनों में बंधता चला गया तथा नित नये दास बनाने के तरीके खोजने लगा। डॉ उमाशंकर मिश्र ने अपनी पुस्तक नृतत्व चिन्तन 2008 में अमेरिकी मानवशास्त्री लेविस हेनरी मॉगर्न के मानव संस्कृति के विकास के तीन चरण को वर्णित करते हुये लिखते हैं कि मानव समाज वन्यता, बर्बरता तथा सभ्यता की अवस्था से विकसित हुआ है। वन्यता की अवस्था विकास के निचले क्रम की अवस्था है इस समय तक मानव समाज समूह में रहना नहीं जानता था। इसलिए इस अवस्था में हम यह कल्पना कर सकते हैं कि मानव आप्रकृतिक दासता के बन्धन से मुक्त रहा होगा। जैसे जैसे समाज का विकास होता गया मनुष्य दासता के बन्धन में बंधता चला गया। इसलिए वर्तमान समय में जॉर्ज बनार्ड शॉ का यह व्याख्यान पूर्णतया सत्य प्रतीत होता है।

शॉ के इस निबन्ध में वर्णित दासता और स्वतन्त्रता की अवधारणओं की प्रासंगिकता वर्तमान विश्व में भी स्वतः ही प्रतीत होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *writetoscore.com/2014/08/19/freedom-by-g-b-shaw-para-by-para-explanation/dated08/02/2017* [1]
2. *www.dictionary.com>browse >freedom*
3. *I.bid*
4. *https://www.vocabulary.com/dictionary/freedom*
5. *writetoscore.com/2014/08/19/freedom-by-g-b-shaw-para-by-para-explanation/dated 08/02/2017* [5]
6. *evirtualguru.com>Books>Kaliedoscope*
7. *http://freehelpstoenglishliterature.blogspot.in/2007/11/gb-saws-freedom.html*
8. *westbengalsscenglish.blogspot.in/2011/11/freedom-by-gb-shaw-questions-and.html?m=1 dated 08/02/2017*
9. *www.indiahallabol.com/quotes-in-hindi/freedom.html dated 22-02-2017*
10. *feJ] mek"kadj- ¼2008½- u`rRo fpUru- iydk çdk"ku- fnYyh- i`0 la0 52&53*
11. *http://ardhendude.blogspot.in/2011/01/iconoclastic-view-of-bernard-shaw-as-it.html*
12. *http://nut.bz/1vq_e18x/*